ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 **PP. NO.- 158-163**

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- III, Issues-25, YEAR- July-Sept.-2022

भारत में दलित, सामाजिक न्याय एवं चुनौतियां

प्रवेश कुमार सिंह

असि0 प्रो0– समाजशास्त्र विभाग, शहीद हीरा सिंह राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, धानापुर–चंदौली (उ0प्र0) भारत

Received-26.07.2022, Revised-01.08.2022, Accepted-05.08.2022 E-mail:pks.socio@gmail.com

सारांशः – *भारत विश्व का सबसे बडा लोकतांत्रिक देश है जहां कि आबादी का बहुत बडा हिस्सा आज भी बहिष्कृत जीवन जीने को विवश हैं। आजादी के इतने वर्षों बाद भी समाज की मुख्य धारा से नही जुड पाया । भारतीय समाज का यह बहिष्कृत हिस्सा भय भूख, गरीबी, लाचारी, तथा सरकारी भ्रष्टाचार के चलते नारकीय जीवन जीने के लिए अभिसप्त है। जीने का अधिकार देता संविधान इस बष्कृित समाज को बराबरी का सामाजिक दर्जा देने कि सैद्धान्तिक संसदीय बात तो करता है, परन्तु असलियत में यह सारी कार्यवाही कागजी तथा अखबारों की खबर बनकर सिमट जाता हैं जबकि जमीनी सच इससे कोसो दूर उस उदास बूढे. भूख तथा बेरोजगारी से बेहाल दलित समाज का चेहरा दिखाता है। सच कि इन्ही परतो के आर पार जिन्दगी जीने का संघर्ष भारतीय दलित समाजकि वेदना को प्रकट करता है। सूचना का अधिकार, बोलने की आजादी, दोनों हाथों को रोजगार, एक अदद सत्य तथा जीने की कोशिश किस मनुष्य समाज को नही चाहिए, आज प्रश्न यह है कि स्वतंत्र भारत के इस तथाकथित स्वतंत्र नाद के नीचे वह सब कुछ मौन बेआवाज तथा निरीह होकर रह गया है जो शायद इस स्वतंत्र भारत की पहली आवाज है। हासियें के बाहर पडा भारतीय दलित समाज आज आत्म सम्मान तथा बष्कृित जिन्दगी से मुक्ति पाने का संघर्ष एवं अपने आत्म सम्मान की लडाई लड. रहा है।*

कुंजीभूत शब्द– लोकतांत्रिक देश, बडा हिस्सा, बहिष्कृत जीवन, आजादी, भारतीय समाज, भूख, गरीबी, लाचारी, सम्मान।

पिछले कुछ वर्षो में दलित मुक्ति आन्दोलनों में एक नये चरण की शुरूआत हुई है जिससे दलित वर्गो कि आत्म चेतना में अभूत पूर्व वृद्धि हुई है। इसका प्रभाव राजनीतिक, आर्थिक सामाजिक प्रकिया और सांस्कृतिक क्षेत्र में स्पष्ट देखने को मिलता है। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में स्वतंत्रता का पांचवा दशक दलित उत्थान की दृष्टि से सकारात्मक और नकारात्मक दशक कहा जा सकता है। सकारात्मक इस दृष्टिकोण से कि दलितो को सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक न्याय की चेतना प्रदान करने में दलितों की राजनीति करने वाले राजनीतिक दलों के राजनेताओं का योगदान रहा और नकारात्मक इसलिए कि जातिवादी राजनीति के कारण सवर्ण– अवर्ण के मध्य मतभेद पैदा होने से सामाजिक विभाजन की प्रक्रिया का आरम्भ हुआ जिसका परिणाम राजनीतिक अस्थिरता के रूप में सामने आया। परिणाम स्वरूप गठबंधन सरकारें अस्तित्व में आयी इस दशक में श्री बी0 पी0 सिंह का सामाजिक न्याय, कांशीराम, मायावती ,मुलायम सिंह यादव और लालू प्रसाद की जातिवादी आक्रामक रूख ने राजनीतिक सत्ता प्राप्त की।

दलितों में व्याप्त अशिक्षा, अंधविश्वास और अन्य कुरीतियों को दूर करने तथा दलितों के विभिन्न जातियों के बीच व्याप्त जातिगत भेदभाव तथा दलितों और अल्पसंख्यकों के बीच होने वाली साम्प्रदायिक घटनाओं का समाधान और अन्य पिछड़ी जातियों और अनूसूतिच जातियों पर होनें वाली हिंसा, उत्पीडन, शोषण जैसे अर्न्तविरोधों को कैसे हल किया जायगा। इस समस्या समाधन की सार्थक नीतियां एवं कार्यक्रमों का अभाव इन राजनीतिक दलो के पास हमेशा से देखने को मिलता रहा है। दलितों के आर्थिक पिछडेपन के लिए ब्राहम्णवादी जाति व्यवस्था को जिम्मेदार मानने वाले इन राजनीतिक दल के द्वारा भूमि–सुधार कार्यक्रमों, उद्योगो में सवर्ण स्वामित्व, वैश्वीकरण के कारण बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का बढता दबाव साथ ही सार्वजनिक संस्थाओं के नीजिकरण के फलस्वरूप करोड़ों दलितों का रोजगार से छटनी के विरूद्ध कभी भी आवाज नही उठाया गया। सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि दलितों को परमपरागत निर्योग्यताओं से मुक्त करने के विषय पर उनके चिन्तन में गांधी अम्बेडकर के दृष्टिकोण की तरह कोई निश्चित कार्यक्रम भी नहीं है।

ऐतिहासिक तथ्य यह है कि सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन के लिए ऐसी राजनीति की जरूरत होती है जिसका मुख्य लक्ष्य केवल सत्ता प्राप्ति तक ही न हो। परन्तु वर्तमान राजनेता अनुसूचित जातियों की ओर केवल सत्ता प्राप्ति तक ही सीमित रहते है। जबकि सामाजिक सुधारवादी नेताओं का लक्ष्य व्यापक परिवर्तन की ओर होता है। परन्तु वर्तमान राजनीतिक दलों का मुख्य लक्ष्य सत्ता प्राप्ति के लिए वोट जुटाना न की दलित उत्थान है यही कारण है कि संवैधानिक प्रावधानों और छः दशको के शैक्षिक और आर्थिक विकास के विभिन्न कार्यक्रमों के बाद भी अनुसूचित जातियों कि स्थिति में कोई विशेष सुधार नही हो सका इसके विपरीत विभिन्न जातियों के बीच आपसी सामंजस्य कम होता गया आज भी विभिन्न जातियां न केवल खान–पान, शादी विवाह, और मेल मिलाप में अलग है, अपितु उनके अपने अपने विद्यालय, सामाजिक संगठन,

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- III, Issues-25, YEAR- July-Sept.-2022

राजनीतिक पार्टी और नेता भी है। ऐसी स्थिति में जहां गैर दलित जातियों के लोग ब्राहम्ण बनाम क्षत्रिय और अगड़ें बनाम पिछड़े खेमों बट रहे है, वहा दलित जातियों का शेष समाज के साथ एकीकरण का सवाल ही पैदा नही होता।

स्वतंत्र भारत के संविधान द्वारा संरक्षणात्मक विभेदीकरण के प्रावधान देने के बावजूद अनुसूचित जातियों की स्थिति में विशेष सुधार नजर नही आता तथ्य यह है कि इन जातियों पर थोपी गयी अयोग्यताएं इनका शोषण, उत्पीड़न से मुक्ति का इतिहास प्रचीन है। उतर बैदिक काल के अंतिम चरण से भारतीय समाज का ढांचा जन्म–जात असमानता पर आधारित अनेक जातियों और उप जातियों में बटता रहा, इस उपविभाजन में कुछ जातियां श्रेणी क्रम में सबसे नीचे रही जिनका उत्पीड़ित और दुर्भाग्यपूर्ण इतिहास ही उनकी पहचान है हांलाकि इसे दूर करने का प्रयास प्राचीन समय से ही हो रहा है। जैन बौद्ध काल से लेकर मध्ययुगीन सूफी संतो से लेकर आधुनिक पुर्नजागरण काल के सुधारवादियों तक किसी को भी पूर्ण सफलता नही मिल सकी।

महात्मा ज्योतिबा फूले ने 1873 में सत्यशोधक समाज की स्थापना की तथा जाति प्रथा जैसी अमानवीय प्रथा को समाप्त करने का प्रयास किया 1850 के दशक में केरल में नरायण गुरू ने भी जाति प्रथा के विरूद्ध आंदोलन चलाया तथा धर्म के क्षेत्र में पुरोहित परम्परा को तोड़ने का नया मार्ग प्रस्तुत किया। दक्षिण भारत के दलितो के उत्थान के सन्दर्भ में पेरियार रामा स्वामी नायर (1879–1973) ने सराहनीय कार्य किया। छत्रपति साहू जी ने अपना ध्यान दलितो कि शिक्षा पर केंद्रित किया। ज्योतिबा फूले कि पत्नी सावित्री फूले ने 1848 में पूना में दलितो कें लिए स्कूल खोला जिसमे सावित्री फूले अध्यापिका हुई थी। दलित सुधार की दिशा में यह बेहद महत्वपूर्ण कदम था। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, राजाराम मोहन राय महाराष्ट के गाडगे बाबा उ0 प्र0 के स्वामी अछुतानन्द, सुन्दरलाल सागर बिहार के बाबू जगजीवन राम इत्यादि ने अपने अपने समय में दलितोद्धार एवं समाज सुधार के सराहनीय प्रयास किये लेकिन दलितो कि स्थिति में उल्लेखनीय सुधार नही हो पाया। क्योकि 19वी सदी तक इस विषय पर समाज सुधारको एव विचारको का दृष्टिकोण धार्मिक रहा।

बीसवी शदी के द्वितीय दशक में पहली बार महात्मा गांधी और डा0 अम्बेडकर ने अलग अलग दिशाओं में दलितों की समस्याओं के समाधान के लिए यर्थाथवादी एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से न केवल अध्ययन किया बल्कि इन दोनो इन जातियों के उत्थान के लिए लिए भी आन्दोलन चलाए। भारतीय समाज और राष्ट्र निर्माण में जिन चिंतको की मुख्य भूमिका रही उसमें महात्मा गांधी और डॉ0 अम्बेडकर का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। दोनो ने आधुनिक भारत के सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक ढाचे के निर्माण में व्यवहारिक कार्य किए डॉ0 अम्बेडकर ने भारतीय संबिधान में जाति भेद, धर्म भेद और लिंग भेद से उसे मुक्त करके दलितों को स्वतंत्रता और समानता के अधिकार प्रदान किए।

डॉ० अम्बेडकर के दृष्टिकोण में दलित जातियों की उत्थान की रणनीति– भारतीय गणतंत्र के महान शिल्पियों में बाबा साहेब डॉ0 अम्बेडकर का प्रमुख स्थान है उन्होने न केवल भारतीय राष्ट्र– राज्य के लोकतंत्रात्तम ढांचे के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई अपितु सामाजिक राजनीजिक रूपांतर की गतिविधियों को गति भी प्रदान की, समाज के दबे कुचले वर्गों की आकांक्षाओं एवं संघर्षो को वे आजीवन अपनी पूरी मेघा से मुखरित करते रहे। इसमे कोई दो राय नही है कि भारत की वर्णव्यवस्था की चक्की में पिसते निचले तबके की मुक्ति की 20 वी शताब्दी में सबसे प्रखर आवाज उठाने वालो में डॉ अम्बेडकर मुख्य थे। क्योकि किसी भी युग में अन्य किसी दलित वर्ग के समाज सुधारक ने सवर्ण हिन्दूवाद कि अन्तरात्मा को इतनी करारी चोट नही पहुचाई जितनी डॉ अम्बेडकर ने उन्होने अपने व्यक्तित्व से सवर्ण हिन्दूओ के लिए एक सीधी उत्तेजनात्मक चुनौती खड़ी की। साथ ही अछूत होने के कलंक की विभिषिका का दर्द जो उन्होने स्यवं झेला था को दूर करने का प्रयास तथा इन पीडित और बहिष्कृत समाज को नागरिक और राजनीतिक अधिकार दिलाने हेतु प्रयासरत थे इस हेतु उन्होने तीन प्रकार के दृष्टिकोण प्रस्तुत किए।

1. अनुसूचित जातियों की समस्याओं को उजागर करने के लिए 'मूकनायक' और 'बहिष्कृत भारत' पत्रिकाओं का प्रकाशन तथा सामाजिक एवं शिक्षण संस्थाओं का गठन। नागरिक अधिकारों को प्राप्त करने के लिए सार्वजनिक स्थानों, तालाबों, कुओं, मंदिरों में प्रवेश एवं जनेऊ धारण करने जैसे सत्याग्रहों का आयोजन
2. अनुसूचित जातियों को जागरूक करने के लिए आत्मबल से संघर्ष करने पर जोर।
3. अनुसूचित जातियों की राजनीतिक भागीदारी और संबैधानिक सुरक्षा सम्बन्धित मुददे ब्रिटीश शासन के समक्ष रखना।

सामाजिक उत्थान की रणनीति– अम्बेडकर हिन्दू समाज में आमूल परिवर्तन लाना चाहते थे इसलिए उन्होने सर्वप्रथम दलित जातियों के नागरिक उत्थान पर बल दिया सन 1920 में डॉ0 अम्बेडकर ने एक मराठी पत्रिका 'मूकनायक' का प्रकाशन किया। इसी दौरान कोल्हापुर में अनूसूचित जातियों को सम्बोधित करके तत्कालीन राजनीतिक समस्याओं से उन्हें परिचित कराया। मार्च 1924 में डॉ अम्बेडकर ने 'बहिष्कृत हितकारणी सभा' का पुनः स्थापना करके दलितों के लिए शिक्षा

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- III, Issues-25, YEAR- July-Sept.-2022

संस्कृति का प्रसार, छात्रावासों, पुस्तकालयों, और सामाजिक अध्ययन केन्द्रो की स्थापना पर बल दिया। सबसे बडी चुनौती का वर्ष डॉ0 अम्बेडकर के लिए 1927 का रहा जब उन्होने महाड़ चोबदार तालाब में दलितों को जल पिलाने के लए सत्याग्रह किया। इसी दौरान दलितो के अधिकारों के लिए एक अन्य पत्रिका 'बहिष्कृत भारत' का प्रकाशन किया। 3 नवम्बर 1927 को अमरावती के अम्बा देवी मंदिर प्रवेश के सम्मेलन में पृथक मंदिरों का कड़ा विरोध किया और वर्तमान मंदिरों में दलितो के प्रवेश पर बल दिया। 25 दिसम्बर 1927 को महाड़ के दलित सम्मेलन में उन्होने कहा की अस्पृश्यता निवारण और अन्तर्जातीय भोजो से दलितों के दुखों का अन्त नही होगा। इसलिए सभी विभागों की सेवाएं एवं व्यापार में उनके लिए द्वार खुलने चाहिए और हिन्दू समाज का पुर्नगठन समानता एवं जातिवाद के अभाव के सिद्धांत पर होना चाहिए। समान मानव अधिकारों के लिए 22 मार्च 1928 के दिन बम्बई में 500 महारो को जनेऊ धारण करवाया बाबा साहब के लिए 2 मार्च 1930 वर्ष एक चुनौती के रूप में तब आया जब उन्होने दलितों की सामाजिक राजनीतिक मुक्ति के लिए प्रसिद्ध कालाराम मंदिर प्रवेश के लिए सत्याग्रह आरम्भ किया।

डॉ अम्बेडकर के नेतृत्व में जो दलितोत्थान के कार्यक्रम चल रहे थे वे मात्र तालाब, मंदिर प्रवेश या जनेऊ धारण तक ही सीमित नही थे वल्कि वे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक रूप से हिन्दू समाज में पूर्ण परिवर्तन के लिए चल रहे थे। सन 1924–28 तक के आन्दोलनों से उन्हे यह अनुभव हो गया था स्वर्ण जातियां दलितों के उत्थान के प्रति उदासीन है। इस कारण उन्होने स्वतंत्र कार्य पद्धति को अपनाया अनूसूचित जातियों की सामाजिक शैक्षिक और राजनीतिक क्षेत्रो में प्रगति के लिए ' आत्म सहायता ही सबसे उत्तम सहायता' की नीति अपनाने पर बल दिया इसलिए बाबा साहब ने दलितों का आह्वान किया और उन्हे बताया कि शिक्षित बनो ं संगठित रहो और संघर्ष करों।

राजनीतिक उत्थान की रणनीति – बाबा साहब को अपने संघर्ष के आरम्भिक काल में व्यस्क मताधिकार शक्ति पर बडी आस्था थी और उनका विश्वास था कि अनुसूचित जाति अपनी संख्या के बल पर सत्ता में कब्जा कर और कानून बनाकर सदियों पुरानी सामाजिक विषमता को दूर कर सकती है। इसलिए सामाजिक परिवर्तन के रास्ते के रूप में राजनीतिक शक्ति को प्राप्त करने लिए उन्होने ने अपनी विद्वतापूर्ण तर्क शक्ति का प्रयोग किया। डॉ अम्बेडकर की दृष्टि में दलित वर्ग स्वयं में ऐसे लोगों का समूह जिन्हे हिन्दू तो कहा जाता है, परन्तु वे हिन्दू जाति का किसी भी अर्थ में अविभाज्य अंग नही है। वे न केवल उनसे अलग रहते है। अपितु इन्हे जो दर्जा प्राप्त है वह भी भारत में अन्य जातियो के दर्जे से बिल्कुल भिन्न है। हिन्दुओं ने कभी भी सामाजिक तौर पर दलितो. को अपना बन्धु नही माना दलितो को महज राजनीतिक कारणों से हिन्दू माना जाता है दलितो की संख्या और वोट शक्ति का इस्तेमाल कर सवर्णो ने सारे राजनीतिक लाभ अपनी झोली में डाल लिया और बदले में दलितो को मिला शोषण और उत्पीडन।

डॉ अम्बेडकर कहते है कि जब तक हमारे हाथो मेराजनीतिक शक्ति नही आती तब जक हमारा उत्थान सम्भव नही है उनकी दृष्टि में दलितो की राजनीतिक और आर्थिक उत्थान के लिए राजनीति में भागीदारी होना आवश्यक है। साथ ही उन्हे आशंका थी की भावी संविधान निर्माण में (1935 का एक्ट) यदि दलितो को सत्ता में भागीदारी नही मिली तो उन्हे हिन्दूओं के शोषण से मुक्ति नही मिलेगी।

बाबा साहब गोलमेज सम्मेलन के पूर्ण अधिवेशन की बैठक (1930) में स्पष्टीकरण देते हुए कहते है कि "देश के राजनीतिक उत्थान पर जब जब बहस छिडी है, हर बार दलितो की समस्याओं को रेखांकित किया गया है और सरकारी दस्तावेजो में दर्ज किया गया है परन्तु जब जब अंग्रेजी सरकार ने प्रतिनिधित्व देने के लिए कदम उठाए हर बार दलितो को जानबुझ कर छोड दिया जाता है। राजनीतिक सत्ता में उनके दावे पर बिल्कुल ध्यान नही दिया जाता हम इस बात का पुरजोर विरोध करते है और अब बिल्कुल सहन नही करेगे" उन्होने कहा" मैं समझता हूं कि शायद यह पहला अवसर है जब चार करोड तीस लाख दलितों कि समस्याओं पर राजनीतिक दृष्टि से विचार किया जा रहा है" वे समिति को यह भी बताते है कि "हमे बार बार यह याद दिलाया जाता है कि दलित वर्गों की समस्या एक सामाजिक समस्या है और इसका समाधान राजनीति में नही है।परन्तु हम इस बात का पुरजोर विरोध करते है और यह महसूस करते है कि जब तक दलित वर्गो के हाथ में राजनीतिक सत्ता नही आती उनकी समस्या का समाधान नही हो सकता इस लिए हमारी मांग है कि "संविधान केवल यही घोषणा न करे कि बाकि समुदायों की तरह दलितों के भी मौलिक अधिकार हो बल्कि इस बात की भी पूरी व्यवस्था की जाय की दलित इन मौलिक अधिकारो का स्वतंत्र रूप से उपयोग कर सके क्योंकि जब तक यह सुनिश्चत न हो कि इन अधिकारों के प्रयोग में जब कभी भी कोई बाधा आएगी तो उसे दूर किया जाएगा तब तक मात्र कागजी घोषणा से काम नही चलेगा। इस प्रकार डॉ अम्बेडकर ने अन्राष्ट्रीय स्तर पर अनुसूचित जातियों के सामाजिक और आर्थिक उत्थान के लिए राजनीतिक भागीदारी और संबैधानिक सुरक्षा की मांग मजबूत तरीके से उठाई जिसको संक्षिप्त रूप से इस प्रकार कहा जा

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- III, Issues-25, YEAR- July-Sept.-2022

सकता है–

1. अस्पृश्यता को कानून द्वारा पूरी तरह से समाप्त किया जाए। अधिकारों के स्वतंत्र और निर्बाध उपयोग कि गारंटी दी जाय तथा इसे प्रति किसी तरह की लापरवाही या पूर्वाग्रह के खिलाफ अपील की जा सके।
2. कानूनी रूप से ऐसे उपाय किए जाएं जिनसे विधान मंडलो या कार्यपालिका के लिए भेदभाव वाले कानून बनाना असम्भव हो जायें
3. संविदा और उसके अनुपालन का अधिकार हो मुकदमा दायर करनें, पक्ष बनने, साक्ष्य देने, उत्तराधिकार पाने, भूमि खरीदने, पटटे पर देने, बेचने, रखने और नीजि सम्पत्ति रखने का पूर्ण अधिकार हो।
4. यदि किसी प्रथा या रूढि के कारण कोई व्यक्ति अयोग्य समझा जाता है या अस्पृश्यता के कारण के कारण कोई भेदभाव किया जाता है तब संविधान उस प्रथा या रूढी को अवैध घोषित करे।
5. प्रत्येक प्रान्त में दलित वर्ग का आशय ऐसे व्यक्ति से रहे जो ऐसे समुदाय का हो जो अस्पृश्यता जैसी समस्या से ग्रस्त है और जिसका नाम चुनाव के प्रयोजन के लिए बनाया गई सूची में उल्लिखित हो।
6. भारत तथा उसके सभी प्रान्तो में सरकारी नौकरी में भर्ती के लिए लोक सेवा आयोंग का गठन किया जाये। आयोग का यह कर्त्तव्य होगा की वह लोगों कि योग्यता को देखते हुए भर्त्ती इस तरह करें , ताकि सभी समुदायों को उचित प्रतिनिधित्व मिलें और प्रतिनिधित्व घटने बढने पर वह देखे कि किस समुदाय को प्राथमिकता देनी चाहिए।
7. दलितो की हितो की रक्षा के लिए और उनके उत्थान के लिए एक अलग विभाग बनाया जाए जिसका प्रमुख एक मंत्री हो। मंत्री का काम यह देखना हो कि दलितों के साथ अन्याय और उत्पीडन न होने पाए। इसके अलावा दलितो के उत्थान का कार्य भी वह करें।
8. आवास, शिक्षा–संस्थाओं, धर्म–शालाओ, वादियो, झरनों, झिलो, कुओं, तालाबों, सडको, गलियों, रास्तो, सार्वजनिक वाहनों, विमान सेवाओं, नौवहन, थियेटरों, व आम सार्वजनिक स्थानों का आम नागरिकों की तरह दलितों को भी इस्तेमाल करने का अधिकार हो।
9. सार्वजनिक हित में गठित किसी धर्माथ ट्रस्ट का लाभ बिना किसी भेदभाव के पाने का अधिकार हो।
10. नागरिको के जीवन व सम्पत्ति की रक्षा के लिए बने कानूनों और अन्य कानूनी प्रक्रियाओं का अन्य नागरिकों की तरह समान रूप से लाभ दलितों कों भी हो।
11. विधानमण्डल में दलितों का उचित प्रतिनिधित्व चुनाव से हो मनोनयन पद्धति से नही।
12. प्रान्तीय और केन्द्रीय विधान मण्डलों में उचित प्रतिनिधित्व मिलें।
13. प्रारम्भ के दस वर्षो के लिए पृथक निर्वाचन मण्डलों द्वारा और उसके बाद संयुक्त निर्वाचक मण्डलों और आरक्षित सीटों द्वारा प्रतिनिधित्व देने का अधिकार हो, वशर्ते कि वयस्क मताधिकार का प्रयोग किया जाए।

भारत के राजनीतिक इतिहास में यह पहला अवसर था जब किसी वर्ग के सुधारक द्वारा शोषितों और उत्पीड़ितों के उत्थान के लिए राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय स्तर पर भरतीय सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक व्यवस्था में, समान अधिकारों की मांग न केवल वैज्ञानिक रूप से प्रस्तुत कि गई थी बल्कि दलितों को अधिकारों से बंचित करने की दशा में दण्ड की मांग भी की गई। दलितों का यह सौभागय ही रहा की स्वतंत्र भारत के संबिधान निर्माण में बाबा साहब को संविधान सभा की प्रारूप समिति के अध्यक्ष के हैसियत से अपनी परिकल्पनाओं को साकार करने अवसर प्राप्त हुआ।

राष्ट्र की मुख्य धारा में दलित – समय समय पर देश में घटित होने वाली राष्ट्रीय महत्व की घटनाओं पर हर क्षेत्र के बुद्धिजीवियों की राय प्रस्तुत कि जाती है, लेकिन दलित बुद्धजीवियों, पत्रकारों का आमंत्रण दलित मुददो बहुत कम देखने को मिलता है। तब उनकी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार में अवसर की उपलब्धता पर भी गौर किया जाए तो बात संबिधान की भावना के अनुकूल बन सकती है। मीडिया की दलित नीति स्पष्ट और कारगर होनी चाहिए।

कहा जा सकता है कि दलित को अपने प्रतिनिधित्व की मांग राज्य द्वारा संचालित संस्थाओं में करनी चाहिए, स्वायत्त और निजी क्षेत्रों में नही तब प्रश्न उठता है कि क्या स्वायतत क्षेत्र मनमाने ढंग से चलेगे? दुर्भाग्य से दलितो को उत्तराधिकार के रूप में न तो इलेक्टानिक मीडिया में जाति–विरादरी के लोग मिले और न ही आजाद देश के प्रिंट मीडिया में हिस्सेदारी। एकाध अखबार को छोड़ दे तो सैकडो अखबरों के एक भी स्तम्भकार दलित नही है। 25 करोड़ की जनसंख्या वाले दलित की ओर से बोलने के लिए गैर दलित ही है। दलित विषय के स्वंयभू विशेषज्ञ गैर दलितों के समक्ष जब भी यह प्रश्न रखें तभी वे तुरन्त जवाब देते हैं' पत्रकारिता आधुनिक विधा है। इसे आप सामन्ती चरित्र से नही जोड़ सकते। पत्रकारों की दृष्टि वर्ण भेदी नही हो सकती। जब जब दलितों की हत्या होती है या दलित स्त्री निर्वस्त्र की जाती है, तब तब उसकी खबर

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- III, Issues-25, YEAR- July-Sept.-2022

यथोचित स्थान देकर छाप तो दी जाती है और भविष्य में भी दलितों को मरने–पिटने दीजिए हम प्रमुखता से छापेगे, अब आपका समाधान हो जाना चाहिए' इस तरह लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ सामाजिक रूप से कितना खोखला है समझा जा सकता है।

वर्तमान में भी अगर जाति ने सार्वजनिक चेतना पर अपनी पकड़ बरकरार रखी है तो इसका कारण संगठित राजनीति है। आज ताकत के औजार के रूप में जाति की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है इलाहाबाद की सार्वजनिक संस्थाओं मसलन प्रेस, क्लब, विश्वविद्यालय शिक्षक संघ, बार एसोसिएशन, स्वयं सेवी संगठन व मजदूर संगठनो के ताकत और प्रभाव के पदों पर उॅची जाति के लोगो की हिस्सेदारी कितनी है, जानने के लिए ज्यां द्रेज (विजिटिग प्रोफेसर, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) ने एक अध्ययन किया–तकरीबन 25 सार्वजनिक संस्थाओं के 1000 से ज्यादा ताकत और प्रभाव के पद शामिल किए गये। अध्ययन में पाया गया कि करीब 75 फीसदी पदों पर उॅची जाति के लोग हैं। जबकि उ0 प्र0 की आबादी में इनका हिस्सा केवल 20 प्रतिशत है। अकेले बाहम्ण और कायस्थ ही ताकत और प्रभाव के पदो पर बैठे है। यानी आबादी में अपनी तादाद से लगभग 4 गुना ज्यादा। ये आकड़े कच्ची गणना पर आधारित है फिर भी नतीजा साफ है– सार्वजनिक संस्थानों में उॅची जातियों की मजबूत पकड बरकरार है। इनमें भी महत्वपूर्ण बात यह की नमूने में जिन सार्वजनिक संस्थाओं को शामिल किया गया उनमें कुछेक अपवाद को छोड दें, जैसे विश्वविद्यालय की शिक्षक मंण्डली जहां आरक्षण के नियम लागू है तो दलितो के मौजुदगी के कोई परिणाम नही मिले।

संयुक्त राष्ट की विश्व सामाजिक स्थिति रिर्पोट 2010 के अनुसार भारत में दलितो की स्थिति बहुत खराब है। प्रति हजार दलित बच्चो में 83 शिशु जन्म लेते ही मर जाते है, 119 बच्चों की मौत 5 बर्ष के भीतर हो जाती है। दलित आवश्यक वस्तुओं के उपयोग खर्च में सामान्य लोगों के उपयोग खर्च से 42 फीसदी पीछे है। सारांश यह है कि राष्टीय उत्पादन और कथित सकल घरेलू उत्पाद में दलितो की भागीदारी हताशा जनक है।रिर्पोट के अनुसार भूमि स्वामित्व के मामलो में दलितों कों प्रशासनिक दिक्कते आती है

संयुक्त राष्ट की एक अन्य रिर्पोट के अनुसार ' जिसमे कहा गया है कि भारत, पाकिस्तान, नेपाल के समाज में जाति आधारित व्यवस्था के कारण निचली जातियों के लोग समाज बहिष्कृत है। यह दुखद है कि आजादी के छः दशक बीत जाने के बाद भी देश जातिगत समाज में बटा हुआ है और दलितों पर होने वाले का साक्षी बना हुआ है। जिस देश में हर धर्म से उपर मानवता को स्वीकारने का दावा किया जाता हैं उसी देश में दलितों से उनके संबैधानिक अधिकार छिन लिए जाते है। यू तो अनुसूचित जातियों और जनजातियों का आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सशक्तीकरण केन्द्र और राज्य सरकारों के विकास का एजेण्डा रहा है परन्तु दुख की बात यह की सब बयानों और कागजों पर सीमित हो कर रह जाता है।

आमतौर पर यह माना जाता है कि जातिगत भेदभाव सिर्फ ग्रामीण क्षेत्रो तक ही सीमित है परन्तु सत्य इससे परे है महानगरों में जातिगत भेदभाव व्याप्त है यद्यपि इसका स्वरूप भिन्न है ग्रामीण क्षेत्रो में जहॉ जमीन हथियाने के नरसंहार, दलित दूल्हे को घोड़ी से उतार देना, कुए से पानी लेने पर दण्डित करना आदि आम है। वही गांवो से शहरो की प्रवास करने वाले दलित युवाओं को कड़वे अनुभवों और अपमान का सामना करना पडता है दलितों के प्रति घृणात्मक सोच निम्न वर्गो को लेकर मध्यमवर्गीय श्रेणी तक ही सीमित नही है।

"खैरतांजी:स्टेच एण्ड विटर क्राप" किताब के लेखक आन्नद तेलतुण्डे– अम्बेडकर के नेतृत्व ने दलितों में आत्म विश्वास जगाया। मगर अम्बेडकर के बाद क्या हुआ? बिखरते नोटो के लिए बिकते और आरक्षण को रामबाण की तरह पेश करते हमारे नेता आखिर नौवजवानों में गर्व और आत्मविश्वास की भावना कैसे जगा सकते है? अपनी ही जन्म भूमि में प्रताडना, अपमान, और तिरस्कार दलितों में कुंठा भर रहा है वह न केवल सामाजिक बल्कि आर्थिक तौर पर भी पिछड रहे हैं। मूलभूत प्रश्न यह उभर कर सामने आता है कि दलितों के प्रति यह भेदभाव क्यों?

अमेरिका की सेन्टर फार हयूमन राइटस एण्ड ग्लोबल जस्टिस तथा हयूमन राइटस वाच ने भारत में दलितों की स्थिति पर जारी रिर्पोट में कहा है कि भारत में 16.5 करोड से अधिक दलितों को भेदभाव के खिलाफ बने कानूनों और नीतियों के बावजूद केवल जातिगत आधार पर अत्याचार का शिकार होना पडता है।

सामाजिक विचारकों और सामाजिक न्याय केन्द्र के अध्यक्ष चन्द्रजीत यादव 'भारतीय समाज में दलित एवे कमजोर वर्गो की स्थिति' नामक पुस्तक में लिखते है– 'चाहे जिस महान लक्ष्य को सामने रखकर और कितनी ही बडी स्वेच्छा से वर्ण वयवस्था हो गयी जिसने भारतीय समाज को खोखला, आत्मसम्मानहीन तथा उसके प्रगतिशील स्वरूप को को विकृत कर दिया। वर्ण व्यवस्था जिसने श्रमविभाजन का ध्यान में रखकर स्थापित किया गया था, अन्ततोगत्वा श्रम का नही अपितु श्रमिकों के विभाजन में परिवर्तित हो गयी और उसने विकृत जाति व्यवस्था का स्वरूप ग्रहण किया' आगे लिखते है 'भारत जैसे

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- III, Issues-25, YEAR- July-Sept.-2022

रूढिवादी, परम्परावादी, जातिव्यवस्था वाले देश में किसी आमूल चूल क्रान्ति की सम्भावना वास्तविकता को नकारने के समान होगी और विशेष रूप से हमने एक प्रजातांत्रिक ढाचे को स्वीकार किया है तो निश्चत रूप से हमे एक संतुलित और समन्वित दृष्टिकोण जीवन में समाज में और प्रशासन में भी अपनाया होगा।,

सामाजिक न्याय की प्रक्रिया में विकास तथा शिक्षा की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। जो भी देश आर्थिक रूप से पिछडा हुआ है वहा गरीबों एवं दलितो के साथ ज्यादा अमानवीय अत्याचार होते है। ऐसा प्रतीत होता है कि लोकतंत्र और संविधान दलितो को जो अधिकार देता है, उसे समाज नही दे रहा। ये समुदाय देश की उत्पादकता की रीढ़ है, पर इन्हे कोई अधिकार नही मिला। न्यूनतम मदजूरी से लेकर वोट देने और न्याय पाने तक का उसे कोई अधिकार नही है। आजादी के 60 दशक गुजर जाने के बावजूद लोकतंत्र की सारी कसरत उनके लिए एक धोखाधडी बनकर रह गयी। प्रचंड विचारधाराओं और उग्र आन्दोलनो बावजूद भारतीय समाज नही बदला और जब समाज ही नही बदला तो दलितो की स्थिति कैसे बदलेगी?

आज सम्पूर्ण दलित संघर्ष इसी बात को लेकर है कि जो आश्वासन संविधान उन्हे देता है वह समाज नही दे रहा। इसके बावजूद आज कई कारणों से वे शक्तिशाली समूह बन चुके है। उन्हे लगने लगा है कि सरकारे बदलने से उनकी हालत नही सुधरेगी, क्योकि सत्ता का वर्ग चरित्र एक ही है। वे जानते है कि सामंती वर्चस्व केवल राजनीति में नही बल्कि साहित्य, संस्कृति और पूरी सामाजिक व्यवस्था में भी कायम हैं इसलिए वे हर जगह बिद्रोह कर रहे है, उनके बिद्रोह की भाषा दूसरी है, उनके संघर्ष का तरीका दूसरा है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. बसु, दुर्गा दास – भारतीय संविधान का परिचय, दिल्ली, प्रिंटींस हाल आफ इण्डिया ,1998.
2. शर्मा, रामशरणर – शूद्रो का प्राचीन इतिहास, नई दिल्ली दि मैकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया लि0 1997.
3. सिंह, रामगोपाल – भारतीय दलित : समस्याए एवं समाधान, भोपाल मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी 1998.
4. दत्ता, डॉ0 महेश्वर – गांधी अम्बेडकर और दलित, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2005.
5. रत्तू, डॉ0 कृष्ण कुमार – भारतीय दलित और मानवाधिकार जातिवाद और संबैधानिक संरचना , कुक एन्क्लेव जयपुर भारत 2002.
6. लाम्बा, एस. सी. – मानवाधिकार और पिछडा वर्ग, अविस्कार पब्लिशर्स डिस्टीब्यूटर्स जयपुर (राजस्थान) 2005.
7. बिद्रोही, एम. आर – दलित दस्तावेज, सम्यक प्रकाशन नई दिल्ली 2004.

दैनिक समाचार पत्र–

1. दैनिक जागरण– 11 फरवरी 2010
2. दैनिक जागरण– 3 फरवरी 2010
3. हिन्दूस्तान – 29 नवम्बर 2012
4. जनसंदेश टाइम्स– 11 नवम्बर 2012

*****